महामाया-त्रयी

B-2

व्योम मैं गई जो स्थान एक ज्योति भई तब।
भई महा प्रकाशिनी, त्रिमोहिनी व' नारि तब ॥ [पृष्ठ ८]

अनूठी आत्म-कथा

८६ वर्ष की अवस्था में अपने भक्त सेवकों के अनुरोध को स्वीकार कर पूज्य श्री उपाध्याय जी ने अपनी आत्म-कथा "प्रेमघन

जब हम हाईकोर्ट में थे—पृ० १६७

परिवार" नामक ग्रन्थ में लिखी है। उसी ग्रन्थ का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है—

साधनमाला—नवमवर्ष—मणि ३

महामाया-त्रयी
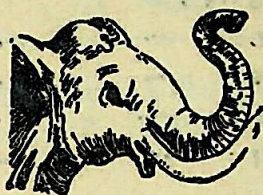
प्रणेता

'कुल-विद्या-वारिधि'

पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रथम संस्करण] दीपावली २०२७ [मूल्य २-००

विषय-प्रवेश

भूल-सुधार

पृष्ठ १७, १६, २१ और २३ पर 'द्वितीय आविर्भाव' के स्थान पर कृपया 'तृतीय आविर्भाव' कर लें।

पृष्ठ ४१ पर 'महाभारतीय' के स्थान पर कृपया 'केनोपनिषदीय' कर लें'।
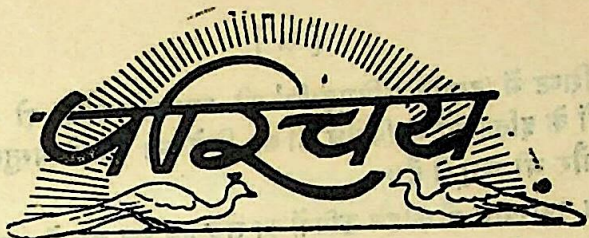
प्रस्तुत पुस्तक में 'महामाया' के तीन प्रामाणिक चरितों को पद्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपने ढंग की एक निराली ही बात है।

श्रीमद् देवीभागवत, मार्कण्डेय पुराणादि में 'महामाया' का जो माहात्म्य-गान किया गया है, वह 'दुर्गा सप्तशती' के अत्यधिक लोकप्रिय हो जाने से सर्व-साधारण सभी लोगों को ज्ञात ही है। उसी कथा का भावानुवाद आदि, द्वितीय और तृतीय आविर्भाव के शीर्षक से इस पुस्तक की पहली रचना में किया गया है।

'महामाया' का दूसरा चरित प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ महाभारत के भीष्म-पर्व में पढ़ने को मिलता है। उसे लोग कम ही जानते होंगे। उसी का पद्यात्मक वर्णन इस सङ्कलन की 'महाभारतीय महामाया' में किया गया है।

'महामाया' के तीसरे चरित की छटा केनोपनिषद् में देखने को मिलती है। दार्शनिक महत्त्व होने के कारण विज्ञ जनों को इस चरित की जानकारी होगी। इसी का काव्यात्मक रूप 'केनोपनिषदीय महामाया' में मिलता है।

इस प्रकार "महामाया-त्रयी" के अन्तर्गत महामाया के तीन चरितों को काव्य रूप में प्रस्तुत कर परम पूज्य ब्रह्मर्षि 'कुल-विद्या-वारिधि' पण्डित नर्मदेश्वरप्रसाद जी उपाध्याय ने श्रीजगदम्बा के भक्तों का बड़ा हित-साधन किया है। इसके लिए वे आपके सदा आभारी रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

परिशिष्ट में 'ददाति प्रतिगृह्णाति' की व्याख्या और दो प्रसिद्ध उपनिषदों के इतिहासों में विरोध की जो विवेचना आपने प्रस्तुत की है, वह और भी अनूठी है।

श्रद्धेय उपाध्याय जी की इन कृतियों का सङ्कलन इस रूप में प्रकाशित कर 'कल्याण मन्दिर' अपने को कृतकृत्य मानता है। हमें विश्वास है कि श्री जगदम्बा के भक्त इस पुस्तक के पाठ से न केवल आनन्द का लाभ करेंगे, अपितु ज्ञानार्जन भी करेंगे।

जन्माष्टमी २०२७
प्रयाग—६

—रमादत्त शुक्ल
एम०ए०

दुर्गा सप्तशती

भावानुवाद

आदि आविर्भाव

प्रलय

(राग भैरव)

शान्ति रूप सागर प्रशान्त में, शयन करत सागरशाई ।
अहंकार, तन्मात्रा सब ही, लुप्त भई तजि पृथकाई ॥
शान्त भई सागर की ऊर्मी, जल ही जल चहुँ दिखराई ।
शान्त भये सब प्राणी जगके, महा विवर सब जनु जाई ॥
अब रहे सूर्य न तारा अवली, इन्दु सिन्धु अन्तर धाई ।
घोर तिमिर तिमिराकृत सागर, तम की ही चहुँ अधिकाई ॥
कमल-योनि कमलाकृत आनन, चतुरानन की चतुराई ।
परम विरक्त विमन विधना लखि, मम कृत सब गये विलाई ॥
सिरजे जो जग जीव ज्योतिमय, सुर लखि जात मोहाई ।
क्रूर काल है अति निर्मोही, नाशन में है प्रभुताई ॥

नाश कियो उपकारी गंगा, जमुना जो मोहन भाई।
राम कृष्ण क्रीडाथल ध्वंस्यो, निडर काल है दुखदाई॥
सृष्टि नाश सों दुर्मन ब्रह्मा, धरे ध्यान जो सुखदाई।
कमल नाल लहि गये नाभि महँ, चकित भये लखि अधिकाई॥
सब ही उनकी सृष्टि मनोहर, विलसत थल थल वहि ठाईं।
वहीं सूर्य वहिं चन्द्र विराजत, तारन की छवि वहिं छाई॥
मोहित चहुँ दिसि घूमन लागे, जनु बिछुड़े जन सब पाई।
प्रलय कहाँ? शंका मन उपज्यो, सकल सृष्टि तो वहँ सब आई॥
मन प्रसन्न अति नैन उघार्‌यो, भय हिय आय समाई।

(नाराच)

दैत्य दो महान विष्णु कान से उत्पन्न थे।
दौड़ धूप कै न कोऊ, पाय कै विपन्न थे॥
अति भयावने कराल, काल हू के काल लौं।
रक्त नेत्र सों निहारते, मनौ अकाल लौं॥
कमल नाल पै विराजमान, एक देखि कै।
उन्हैं डरावने लगे, बार बार जाइ कै॥

(दोहा)

त्रस्त हुए ब्रह्मा समुझि, इन दैतन की चाल।
कवलित मोहि करन चहैं, मोरहु आयो काल॥

पालक रक्षक विष्णु तो, सोय रहे इह काल ।
माया निद्रा सँग लपटि, समटि सबै भव जाल ॥
सुमिरन लागे चतुर्भुज, भगवति माया कोहि ।
विस्मित दैत्य दोऊ किधौ, गान सुनावति मोंहि ॥

(सिन्ध भैरवी)

आपुहि जग की हौ माता । टेक ॥

तुम हो स्वाहा स्वधा अरु माया,
तुम जग की हो त्राता ।
आपुहि शोभा, क्षमा, दया हौ,
सकल सृष्टि निर्माता ॥
आपुहि विद्या, मेधा, मोहा हौ,
विष्णु शक्ति को दाता ।
सत अरु असत वस्तु हे देवी,
शक्ति आप सों पाता ॥
आपु शक्ति लहि विष्णु पालते,
सो सोवत हैं धाता ।
मैं विपन्न मधुकैटभ त्रासित,
बनौ दुःख को हर्ता ॥
जगन्नाथ की निद्रा यौगिक,
अब हरौ जगन्माता ॥

(दोहा)

बूढ़े बाबा को विनय, सुनि कै परम प्रसन्न ।
निद्रा माया को हरी, ब्रह्मा देखि विपन्न ॥
माया निद्रा को तजत, उठे विष्णु भगवान ।
देखा मधुकैटभ विकट, दैत्य महा बलवान ॥
भयो घोर भीषण महा युद्ध दैत्यन संग ।
विकृत वर्ण विष्णू भये, तजे नीरदी रंग ॥
महा तिमिर तामिस्र मैं, तमकि रहे सब अस्त्र ।
चमकि रही विद्युत प्रभा, चमकि चमकि कै शस्त्र ॥
धमकि धमकि घर्षित करत, अस्त्र तेज को अस्त ।
पस्त न होतो दैत्य बल, समुझि विष्णु अति त्रस्त ॥
मधुकैटभ मोहित कियो, माया नै वहि काल ।
बड़े दर्प अरु गर्व सों, बोले दैत्य विशाल ॥
"हम प्रसन्न तव युद्ध सों, माँगो वर हे देव" ।
"मेरे वध्य बनो दोऊ, यहै माँग मोहि देव" ॥

(सोरठा)

देखि सजल चहुं ओर, बोले मधु कैटभ महा ।
निजल स्थान की खोर, मारो हमको जाय तित ॥

(दोहा)

जघन दिखायो आपनो, तबै विष्णु भगवान ।
जाघै मारे दोउ धरि, दैत्य महा बलवान ॥

धन्य महामाया कियो, विष्णु कहे हरखान ।
मोहित कै उन दैत्यन, वर को कियो विधान ॥

चारो मुख सों चतुर्मुख, धन्य सुमुखि तुम कौन ।
महाशक्ति मोहा महा, वरदा आशु प्रवीन ॥

(घनाक्षरी)

शक्ति महामाया लहि, विष्णु जीते दैतबल,
धनि दियो महाशक्ति महाशक्तिमान को ।
परा शक्ति महाशक्ति, व्यक्त परे, बुद्धि परे,
बिरच्यो अनेक भुव, मोहक महान को ।

कहां लौं बखानौ महामाया तेरो शक्तिबल,
अबल-सबल कै, शक्ति दिव्यमान को ।
दया देखि आस भयो, हिय मै विसास भयो,
दया को पसारि दुख दुरिहौ जहान को ।

द्वितीय आविर्भाव

(घनाक्षरी)

[१]

नील नभ अमल मैं नीरद निनाद करि,
नीर सों निदाघ नासि नदी नद तरपत ।
हरखित नदी नद वेग सो वगरि मग,
करि कुञ्ज कलरव कानन मैं विहरत ।
वाही सम निराकार निरलेप निरगुन,
क्षुभित त्रिगुण सो अनेक रूप उपजत ।
रूपवान, रूपहीन, जीव, निरजीव हू,
जग मैं अनेक रूप चराचर लखियत ॥

[२]

सत रज तम कौ वैषम्य सों विषम सृष्टि,
जाकी गाथा विविध पुरानन मैं देखियत ।
सत के प्रतीक सनकादिक मुनिन मैं,
सत रज मिश्रण जनकादि मैं पाइयत ।
ताही विधि तम रज सों जघन्य क्रूर कर्मी,
राजा रावणादि के विहार मैं लखियत ।

सम को उत्तप्त रूप विकट विकृत रूप,
महिष महा असुर मेदनी मैं जाइयत ॥

[३]

देवन दलित कियो, देवपति लियो जीत,
देवराट दिवि को बनो विराट राजियत ।
पावक, पवन जोति, जीत लियो पयपति,
यम को हू सत्व छीनि, न्याय निज वितरत ।
स्वर्ग सो विहीन भये, अधिकार छीन भये,
मन मैं मलीन भये, देव महि विचरत ।
महिष महामहिम, महिमा कियत कहौं,
महा सो महान, अणुमान इव लखियत ।

(दोहा)

देवदीन माहिष दलित, शुभ सम्मति सब कीन ।
भाग्यहीन को मीत इका, विधि के भाग्य अधीन ॥
ब्रह्मा ढिग सुरगण गए, त्राहि-त्राहि सब कीन ।
ब्रह्मा अगुआ बनि चले, शरण विष्णु को लीन ॥
आशुतोष चक्री रहे, एकहि थल वा काल ।
महिषासुर के विजय की, ब्रह्मा कहे हवाल ॥

(नाराच)

सुने चक्रपाणि औ त्रिशूलपति सबै कथा ।
हुए कृषानु सों सुक्रुद्ध भुजंग पाय ज्यों व्यथा ॥
कढ़ी ज्योति विष्णु सों, महेष सो महा प्रभा ।
इन्द्र वरुण अग्नि आदि सों कढ़ी तबै विभा ॥
व्योम मैं गई जो स्थान एक ज्योति भई तब ।
भई महा प्रकाशिनी, विमोहनी व' नारि तब ॥
प्रसन्न देव-गन तबै, उपानयन दै महत ।
चक्र चक्रपाणि नै, त्रिशूल शूलपति वृहत ॥
वज्र देवराट शंख वरुण शक्ति अग्नि नै ।
कालदण्ड यम दियो, हार शेष स्वामि नै ॥
नगाधिराज नै दियो, सुकेशरी प्रतापवान ।
पानपात्र उत्तमौ धनेश्वरः प्रदत्तवान ॥
महर्घ्य भूषनन सुपूजिता सुरेश्वरी ।
प्रणतपाल देवगण, ददर्श सा महेश्वरी ॥
जहर्ष सा दिवेश्वरी, प्रहर्ष सा भुवेश्वरी ।
निनाद सर्वेश्वरी, सुरारि भीति भयहरी ॥

(बरवै)

शब्द भयो प्रति शब्द, महानति घोर ।
कांपन लग्यो धराधर, धरणी छोर ॥

मुदित देवगण अति जे, रहे विपन्न ।
जय-जय सुरध्वनि किये, परम प्रसन्न ॥
बद्धाञ्जलि सुरगण सब, किये प्रनाम ।
महिषमर्दनी ह्वै हो, जग अभिराम ॥

(दोहा)

शूकरपति सम असुर सब, किये चोट जहँ सोर ।
देखि प्रभा आनन विभा, तीनो लोक अंजोर ॥
जाके चरनन भार सों, भूमि धँसी इक ओर ।
चाप चढ़ावन शब्द सो, होत महा रव घोर ॥
सहसभुजा धारण किये, अस्त्रशस्त्र किरपान ।
सहस रश्मि विद्युत प्रभा, आनन ज्योतिष्मान ॥
सिंह चढ़ी, भृकुटी चढ़ी, चढ़ी कोप की बाढ़ ।
बढ़ी बदन विद्युत विभा, सुर हित आई ठाढ़ ॥
सुरा विजय पीए असुर, अहंकार मद चूर ।
चले चढ़ाए चाप सब, युद्ध करन भरपूर ॥
आवत देख्यो महादल, महाशक्ति भयहीन ।
महा क्रोध भृगुटी चढ़ी, करन उन्हैं द्वै तीन ॥

(नाराच)

कोटि-कोटि रथ चढ़ी, कोटि-कोटि दन्तनी ।
कोटि-कोटि वाजि पै, बढ़े दिगन्तव्यापिनी ॥

चले उदग्र महाहनु, विडाल चक्षुराख्य जो ।
चामरौ चमू लिए, सुवाहिनी को मुख्य जो ॥
भिन्दिपाल शक्ति, मुशल खड्ग अरु पट्टिशन ।
मारने लगे व घेरि घार अस्त्र शस्त्र सन ॥
छायगो अकास बाण को, वितान सो महा ।
सूर्य को प्रकाश जो, व धूलि तिमिर मे निहा ॥
ज्योति एक ही रही, जो ज्योति को प्रकाशती ।
विकासती प्रभा चहूँ व, अंधकार नाशती ॥
अम्बिका प्रदीप में, पतङ्ग सम भए असुर ।
महाशक्ति को प्रताप देखिकै महा असुर ॥

(दोहा)

महिषासुर दौड्यो विकट, किए नेत्र दोउ लाल ।
फेकन लाग्यो असुर वह, भूधर नेक विशाल ॥

(सवैया)

बहु रूप धरचौ, बहुशस्त्र गह्यो,
बहु यत्न कियो छलहू अधिकाई ।
मृगराज बन्यो, पुनि नाग बन्यो,
पुनि खण्ड लिए मानुष तन जाई ।
बहु वार कियो चिग्घाड़ कियो,
संहार कियो माया तन पाई ।

यहि देखि निशाचर को उत्पात,
सरोष, शिवा, शिव शूल लै धाई ॥
वहि पाद हन्यो, धरनी पै गिर्यो,
महिषासुर पै चढ़ि खड्ग उठाई ।
काटि लियो शिर, प्राण तज्यो वह,
देन लगे सब दैत दुहाई ।
भीति हर्यो सुर को सुरश्रेष्ठी,
देव सुमन सुमनस बरसाई ।
बाजि गए नभ मै नभ डिंडिम,
स्तवन किए ऋषि मुनि हरषाई ॥

(कोदरा)

धनि-धनि महिषमर्दनि मातु ।
दैत दुख को दमन करिकै, दियो मोद अपार ।
क्रोधहू करि करत तुम हो, जगत को उपकार ॥
दुष्ट दानव यदपि मार्यो, दियो स्वर्ग सिधार ।
भक्त की तो भय विभञ्जिनि, भव उतारत पार ॥
स्मरण सो सब विपति भागत, शुभ करत सञ्चार ।
कुटिल कर्मफल को विनाशत, करि दया विस्तार ॥
दया सों चित सदा पुलकित, करत जग उपकार ।
धन्य मातु धनि जगतजननी, सुनत दीन पुकार ॥

(पद्धरी)

सुर गण मुनि पूजित मातु पेखि ।
उपकृत देवन हृदय देखि ॥
सुस्मित बोलीं, जगजननि देव ।
साद्य करौ जब नाम लेव ॥

प्रथम आविर्भाव समाप्त

तृतीय आविर्भाव
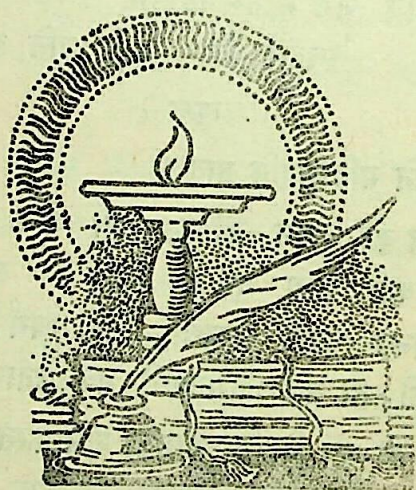
(रोला)

सत गुण को स्वरूप श्वेत शीतल हिमि आकर ।
रज गुण रञ्जित होत, परसि उद्दीप्त दिवाकर ॥
तम को आकर होत जबै वह रहित निशाकर ।
परबत मैं सम्राट हिमालय सब गुण आकर ॥

जहां बसत कुबेरराज किन्नर अरु मुनि जन ।
रहैं सिद्ध गन्धर्व लगाए ध्यान रिषी मन ॥
जहँ सो अंजनि सुत लाय हैं मृत संजीवन ।
उपकृत कै श्रीराम अनुज करि सुस्थित मन ॥

जहँ उतरी भागीरथि पावन पतित उधारन ।
अरु तीन धार ह्वै बही त्रिविधि दुखनाशन ॥
यहीं पार्वती कियो तपस्या नेकन बरसन ।
आशुतोष को पाय अमर कीन्यो वह जीवन ॥

यहीं अहै कैलास, अमर—वन अरु बदरीवन ।
भागे वहिं भगवान कालयवन त्रासित तन ॥
प्रविसे जहँ मुचकुन्द प्रसुप्त रहे बहु बरसन ।
भस्म भयो वह यवन देखि उघरे उन नयनन ॥

बाहि हिमालय शरण लियो, जहँ गंगा पावन ।
दीन देवगण किये महाशक्ती आराधन ॥
स्मरण कार्यो पूर्व प्रतिज्ञा जगदम्बा की ।
करिहौं अवसि सहाय पड़े तुम पै विपदा की ॥
हे अम्बा ! अब रहे इन्द्र नहिं राजा दिवि के ।
भये वरुण कुबेर मरुद् गण वासी क्षिति के ॥
शुम्भ निशुम्भ विजय करि रण मैं सब देवन को ।
मद मैं मत्त हरत हैं देवभाग यज्ञन को ॥
राज-पदों से हीन भए मानुष सम हम सब ।
भए दीन वेदीन देव अइहौ अम्बा कब ॥
तुम हो पालक सिरजन-हार जगत अरु दिवि के ।
हम तुमरे जन वशवर्ती तुमरे अधिपति के ॥
अशरण हम सब शरण भीख माँगत शरण्य सों ।
करौ सपर्य्या ग्रहण मातु दीनन अगण्य सो ॥
रहीं पार्वती तबै जात गंगा को मज्जन ।
प्रणत-पाल अरु करत स्तवन पूँछ्यो उन देवन ॥
काकी स्तुति हो करत पुण्य श्लोक तुम सुर सब ।
उन तन सों निकसि अम्बिका सुस्मित बोलीं तब ॥
अभय दान मैं दियो जबै महिषासुर मार्यो ।
बाहि प्रतिज्ञा करन पूर आवाहन मेर्यो ॥

निकसीं जब अम्बा वहि ठौर अमल आनन लहि ।
भई पार्वती कृष्णा कालिका नाम विदित महि ॥
इन्दु अनेकन की द्युति अम्बा करती फीकी ।
अनिमिष नयन सुरन नै लखि आनन छवि नीकी ॥
उदधि दया मे ऊर्मि विलोडत सुन्दरता को ।
रौद्रवीर प्रच्छन्न मकर शासक शठ कर्त्ता की ॥

(दोहा)

चण्डमुण्ड आए भ्रमत यहि अवसर वहि ठौर ।
देखि अम्बिका रूप दोउ, गए शुम्भ ढिग दौर ॥
महाराज अद्भुत लखी, नारी रत्न ललाम ।
हिमगिर को भासित करत, व्यर्थ शची को नाम ॥
लियो रत्न तुम भुवन को, जे देवन के प्रान ।
ऐरावत गज रत्न यहँ, ब्रह्मा हंस विमान ॥
महापद्म निधि सों लियो, अमल कञ्ज अम्लान ।
कनक छत्र वरसै कनक, वरुण दियो श्रीमान् ॥
प्रजापती रथराज यहँ, वरुण पाश यहँ रत्न ।
युवतिन मैं वा रत्न है, करौ हरन को यत्न ॥

(सोरठा)

जाओ दूत सुग्रीव, शुम्भ दियो आज्ञा तुरत ।
करखा कियो अतीव, मेरो वा स्त्री रत्न सो ॥

(बरवै)

दूत गयो तब तुरतहि, हिमगिर खोर ।
कियो प्रशंसा स्वामी, दूत अथोर ॥
सुस्मित अम्बा बोली हे सुग्रीव ।
कहौ प्रतिज्ञा बालिश मम कियो अतीव ॥
समर करै अरु लेवै, मोहँ जीत ।
पाणि ग्रहण करौंगी, हे मम मीत ॥
दूत कह्यो हौ बुद्धि, हीन तू बाल ।
शम्भु निशुम्भ अहैं सब, दैतन काल ॥
तुम सुकुमार सलोनी, सुन्दरि नारि ।
युद्ध करौगी का ? सुर माने हारि ॥
कही अम्बिका हौं मैं, तो असमर्थ ।
निजी प्रतिज्ञा कैसे, करिहौं व्यर्थ ॥

(नाराच)

अमर्ष सो भरो गयो व दूत शम्भु के निकट ।
कह्यो जवाब अम्बिका दियो खरो निपट ॥
क्रोध सो भरो कराल काल दैत राज नै ।
दैत धूम्रलोचनै कह्यो सुसैन्य साजनै ॥
गर्व सो प्रमत्त नारि अम्बिका परास्त करि ।
ध्वस्त करि लाइयो सहायकनि इतै पकरि ॥

गयो धूम्र लोचनौ भुसैन्य आन बांन सों।
तान तान वान मारि छाय ल्यो वितान सो ॥
शुम्भ को जय ध्वनी उचारतो बढ़ो चलो।
क्रोध सों कृशानु भान गर्व सों मनौ पलो ॥
विहाय सैन दैतने निकासि खड्ग हाथ मैं।
करन वन्दि अम्बिका चलो भरो प्रमाय मैं ॥

(दोहा)

धूम्रनेत्र धावत निकट, रोष अम्बिका कीन।
भस्म कियौ हुँकार सों, भये सैन्य अति दीन ॥
धुत सट अम्बा वाहनौ, अतुल बली अरु वीर।
ध्वंसन लाग्यो सैन को, भाग्यो जोइ अधीर ॥

(सोरठा)

धूम्र लोचनौ नाश, चण्ड मुण्ड सैनिक प्रमुख।
हिय मैं भरो हुलास चले आज्ञा पाय प्रभु ॥
चण्ड मुण्ड मुश्चण्ड, महा लियो सेन विकट।
मद प्रमत्त उद्दण्ड, पकरन अम्बा को चले।

(दोहा)

केसरि वाहिनि अम्बिका, सुस्मित देख्यो सैन।
क्रोध किये अरुणा भई कुञ्चित भृकुटी पैन ॥

प्रगटी भृगुटी तैं विकट, काली रूप कराल ।
बाघम्बर कटि पै लसत, वक्षस्थल मुँडमाल ॥
पाश धरे इक हाथ मैं, दूजे कुटिल कृपान ।
लपलपात जिह्वा ललित, करतो नाद महान ॥

(घनाक्षरी)

काली कराली करवाली कृपाणवाली अति
　　कटक कुचाली असुरन पै छूत्रै परी ।
दाँतन दरदराय मुख सो मड़मड़ाय,
　　हाड़न को तड़तड़ाय ह्वै गो भयंकरी ॥
सुरथ को विरथ कीने, अस्त्रन को चाभ लीने,
　　सस्य सम सेना सारी विसद विघासरी ।
चण्ड को अचण्ड कीनो, मुण्ड को अमुण्ड कीनो
　　हास सों हतास करि सेना सब नासरी ॥

(सोरठा)

चण्ड मुण्ड को मुण्ड, हाथ गहे काली चली ।
असुरन कों सब भुण्ड, भयो पराजित अरु दलित ॥
विहँसत काली जाय, कल्याणी सो वै कह्यो ।
सेना यज्ञ विधाय, चण्ड मुण्ड पशु बलि कियो ॥
करौ स्वयं संहार, शुम्भ अरु वाको अनुज ।
पुनरपि स्वर्ग सिधार, इन्द्र आदि सब देव तब ॥

(दोहा)

बोलीं विहँसत अम्बिका, सुर को शुभ तुम दीन ।
नाम चण्डिका तुम लहौ, उपकृत जग को कीन ॥

(नाराच)

सुन्यो चण्ड मुण्ड को विनाश दैत्यराज नै ।
कोप सों कराल नेत्र लाल कियो असुर नै ॥
कम्बु कोटि वीर्य, मौर्य कालिकेय राक्षसन ।
कालका उदायधौ, ससैन्य साजि लै रणन ॥
घोषणा कियो सबै सुसज्ज अस्त्र शस्त्र सों ।
शुम्भ औ निशुम्भ कुम्भवान महा हस्त सों ॥

(सोरठा)

उठी धूलि बहु धूलि, छाय लियो नभ नील को ।
कर्ण घुस्यो जिमि शूलि, डिंडिम भेरी शङ्ख रव ॥
शस्त्र अस्त्र झनकार, सुनत वन्य भागे चहूँ ।
सेना चली अपार, मनौ सपद पादप भए ॥

(चौपाई)

आवत सेना निधि सम भारी ।
देखि अम्बिका नाश विचारी ॥
भीषण, वीर, भयावह आकृति ।
शिवा सहस प्रम्बा तन निसृति ॥

करन सहाय शक्ति सब देवन।
आई लिए शस्त्र चढ़ि वाहन ॥

हंस चढ़ीं ब्रह्माणी आई।
चन्द्र विभूषित अहि लपटाई ॥

वृषभ चढ़ी माहेश्वरि धाई।
वज्र लिए ऐरावत लाई ॥

सहस्राक्ष की शक्ति सुहावनि।
नारसिंह अति शक्ति डरावनि ॥

वाराही अरु स्वामि कार्त्तिकी।
गरुड़ चढ़ी नारायण शक्तिकी ॥

मरकन लगी शक्तियन सेना।
दहलि दियो दैत्य दल पैना ॥

घनाक्षरी (मनहरण)

छूट्यो ईश ध्यान, उनको बिकल प्रान,
शंकर हू आन वान, छन महि तजिगो।
गौरी जौ सैनिक बन, अम्बिका सहायकन,
प्रान शुम्भ को हरन, शिव तजि भजिगो।
इन्दु भो प्रकाश हीन, गंगा ह्वै अति मलीन,
शंकर भे शक्ति हीन, मनहू उचटिगो।

दौरि आए रन भूमि, मातृ गन शिविर मैं,
देखि गौरी अजिर मे, नाशमन रुचिगो ॥

(दोहा)

शिव बोले तब शिवासनि, रचौ शिविर मै यज्ञ ।
यज्ञ भाग हारी असुर, देवै बलि इन अज्ञ ॥
सुनि प्रसन्न अम्बा भई, शिव सो कह्यो सुजान !
दौत्य करो तुम जाइयो, कहो शुम्भ बलवान् ॥
जाओ तुम पाताल सब, बसौ जाय वहि ठौर ।
यज्ञ भाग सुर सब लहैं, लहै इन्द्र सिर मौर ॥
शंकर दूत बना बनै, दियो अम्बिका नाम ।
शिवदूती प्रख्यात जग, सुविदित आठो धाम ॥

(सोरठा)

शिवा दौत्य बनि ईश, कह्यो जाय संदेश यह ।
सुनतहि दैत्य अधीश, सेना सञ्चालित कियो ।

(घनाक्षरी)

बाजनै बजान लागे, डिडिमन भेरियान,
सजान. सजी सैनिकान आसुरो चलै परी ।
लागने उड़ै निसान, वाण धनु पै धरान,
बाजी दन्ति नौ महान, सेना मद मै भरी ।

युद्ध भयो घमासान, चमकैं बहु कृपान,
अग्नि वान, वायु वान. चालू भयो वा घरी ।
चक्र तुण्ड शूल वज्र, दलित असुर दल,
उखड़ि गये सेनापद, अब भै भगदरी ।।

(दोहा)

मातृ गणन मर्दित सबल, सेना देखि अधीर ।
रक्तबीज आयो असुर, लरन अतुल बल वीर ।।
रक्त विन्दु जेते गिरें, रक्त वीज को देह ।
उतनोई उपजैं असुर, वहै देह वहि तेह ।।

(सोरठा)

रुधिर गिरचो बहु वार, रक्त बीज के देहँ सो ।
आयुध अस्त्र प्रहार, मातृ गणन नै जो कियो ।।
रक्त बीज सम तेज, कोटि कोटि उपजे असुर ।
सुर मुनि भए नितेज, अब का करि है अम्बिका ।।
समुझीं सुरन अधीर, अम्वा बोली कालिका ।
रुधिर पियो जिमि नोर, रक्त वीज निसृत असृक् ।।
नहि ह्वै है उत्पन्न, तुमरे पान किए असुर ।
सुर हैं सब आसन्न, करौ कृपा हे कालिका ।।

(घनाक्षरी)

कञ्च कराली कालो, प्रबल प्रताप वाली
खप्पर भुजाली वाली, वेधन बैरी लगी।
जगदम्ब आज्ञा पाली, सुरनन पै कृपाली।
शोणित शोषन वाली, रक्त पिवन लागी।
भयंकर भुजाली लै, पैने दांतवाली लाली,
जीभवाली असुरन को कवलन लगी।
मदिरा उन्मत्त लाली, भीषण निनाद वाली।
विकरालो कालो देखि, सेना भागन लगी॥

(सोरठा)

क्षीण रक्त ह्वै नाश, रक्त बीज को सुन्यो जब।
काली कियो विनाश, शम्भु अनुज कोवित भयो।

(वीर गीत)

चलो चलो, धीर वीर, मान नाश को हरो
चण्ड मुण्ड रक्त बीज, भूमि परि परो।
धूम्र लोचनौ मरो, असुर अमित है छरो।
दिवि देवराढ राज, तुम सवनि हरो।
नारि हाथ हत भए, कलंक सिर पै धरो।
भिरो, जुरो, बढ़ो चलो, अजेय हो लरो॥

(घनाक्षरी)

शुम्भ औ निशुम्भ अति, अभिमान सों प्रचण्ड,
उदण्ड दंड धरिकै, सु सैन्य संचालियो।
हीलन लागि मेदिनी, वेहाल भए चराचर,
निहाल भए सुर अब, शत्रु काल आइयो।
अम्बिका सचेत भई, शक्तीन संकेत दई
सेना शत्रु आय गई, अस्त्र शस्त्र तुलियो।
धुत सट नाद कियो, महाशंख वाद कियो
ऐरावत चिंघाड़ कियो, हिय शत्रु हलियो॥

(नाराच)

शुम्भ औ निशुम्भ बढ़े, करन युद्ध अम्बिका।
चण्डमुण्ड रक्त बीज असुर सबल क्षारिका॥
मरे बड़े बड़े असुर तबौ न बुद्धि उन भई।
प्रमाद गर्व मै मदान्ध, शम्भु अस्त्र नै लई॥
शस्त्र अस्त्र से अत्रस्त, थे दोऊ अध्वस्त।
व्यस्त शूल चाप हस्त, मारते व अप्रमत्त॥
चक्र शूल पाश सो वित्रस्त दैत्यबल।
दैत्यराज अम्बिका को मारने बढ़ो सबल॥

(सोरठा)

अम्बा एक प्रहार, शुम्भ गिरो मूर्छित परो।
एकहि शूल सुढार, आहत कियो निशुम्भतव ॥

(बरवै)

मूर्छा सो जब राछस भयो सचेत।
देख्यो अनुज जगत तैं करिगो प्रेत ॥
बोल्यो कुरुख महा करि दानव क्रोध।
अन्य शक्ति लहि गर्वी परम अबोध ॥
सुस्मित अम्बा बोली 'परम अजान।
मम विभूति ये सब हैं तुव नहि ज्ञान ॥
लरिहौं तोहिं अकेलहि मैं संहार।
ऋषि दिवि को करिहौं मै, अब उपकार ॥'

(दोहा)

देवि शक्ति सब मातृगण, प्रविशीं अम्बा देह।
अद्वितीय अम्बा मनौ विद्युत निःश्चल येह ॥
धर्म विरोधी धर्म द्विष, अधर्म राज इक ओर।
धर्म स्थापक अम्बा उतै, नाशन जग को खोर ॥

(घनाक्षरी)

विजित देवन आए, सिद्ध किन्नर धाये
जुहाये, सब गन्धर्व दिवि भाग्य परखन ॥

सरसन सरासन, त्रिशूल शूल बरसन,
फरस पट्टिशन को, होन लाग्यो खनखन।
शुम्भ केर नरदन, धुत सट को गर्जन,
अम्ब चाप फनफन, बधिर ह्वै करनन।
छिपै भीति पूषन, धरनि तजो भरमन।
पवन तजे सनसन, भए सुर अनमन॥

(सवैया)

शुम्भ को शूल त्रिशूल कियो,
अरु चाप अचाप कियो कात्यायनि।
शस्त्र कटे, सब अस्त्र लटे,
विघटें सब यत्नन देवि उपायनि॥
शुम्भ तजो रथतै लड़नो,
अब मल्ल विधी वहै अपनायनि।
नारि सो मल्ल नहीं करनो,
यहि शुम्भ नृशंस को ध्यान न आयनि॥

(दोहा)

मुष्टी सों अम्बा हनी, वक्षस्थल पै दुष्ट,
पादाघात कियो तबै, अम्बा अतही रुष्ट॥
दुष्ट असुर धरनी गिरयो, पाद वज्र आघात।
शिर कृन्तन अम्बा कियो, मिटयो सबै उत्पात॥

(घनाक्षरी)

अमल अकाश भयो, विमल सरित भये
अमल पादित्य भये, आनन देवन के।
अमल अनल भये, निर्मल पवन भये
अमल दिशन भये, अमल मुख जन के।
अमल शशांक भये, अमल तारान भये।।
अमल दीपक भये, आस्य सिद्धन के।।
अमल आश्रम भये, अमल भूयज्ञ भये।
अमल जीवन भये, अमल विज्ञान भये॥

(दोहा)

अग्नि पुरोगम करि चले, देवराट मुनिवर्य।
स्तवन लगे अम्बा स्तुती, उपकृत सब अध्वर्य।।

(केदारा)

धन्नि धन्नि मातु जगत उपकारिनि।
भक्त सुरन के दुःख दुराये,
तुम असुरन संहारिनि ।
सब मंगल मांगल्य आपु है,
अर्थ साधने वारिनि ।
शरणागत दीन दुखी को,
आपुहि विपद विदारिनि।

उतपति पालन जग संहारिनी,
आपु सनातनि रूपिनि ।
कौमारी गौरी नारायणि,
आपु जगत मैं व्यापिनि ।
लक्ष्मी लज्जा, विद्या माया,
श्रद्धा, स्वधा स्वरूपिनि ।
जग की नारी आपु अंश है,
स्वर्ग मुक्ति को दायिनि ।
भुवनेश्वरि अखिलेश्वरि,
अम्बा, सर्वेश्वरि नारायनि ।
आश्रित है जो आपु चरन के,
त्रिविध दुःख उन हारिनि ।
परम दीन, असहाय पातकी,
को आपुहि निस्तारिनि ॥

(रोला)

अति प्रसन्न तुव स्तवन, अहो देवन सिर नायक ।
वचन देहुँ तुम सुरनको, होऊँ सदा सहायक ॥
शुम्भ निशुम्भ सदृश होवैंगे वैवस्वत मन्वन्तर ।
कन्हिौं नाश उन जनमि यशोदा नंद गोप घर ॥

वैप्रचित्त दानव जब करै अवनि उत्पातै।
रक्तदन्तिका नाम होय, उनके भक्षण तैं॥
अति अकाल पीड़ित हित, शाक अतुल उपजाऊं।
शाकम्भरी जगत मैं सुप्रसिद्ध ह्वै जाऊं॥
भ्रामा मेरो नाम पड़ैगो, दैत्य भीम संहारन।
दैत्य अरुण उपजै तब, महिकर क्लेश निवारन॥
षट् पद महा भ्रमर रूप धारण करिकै आऊं।
हरूँ भार भरणी को, भ्रामर रूप कहाऊं॥
यहि प्रकार जगत को: सब दारिद दुःख दुराऊँ।
भक्तन भुक्ति मुक्ति मै देऊँ, भक्तन भार उठाऊं॥

(भैरव) देव स्तुति

जय जय जगदम्बा जननी,
जगत ईश्वरी जग उपकारिनि।
जय जय माया महि महँ माया,
माया महिम अमिय विस्तारिनि॥
जय सर्वेश्वरि, जय भुवनेश्वरि,
जय देवेश्वरि भव भय हारिनि।
जय माहेश्वरि, जय मातेश्वरि,
जय भक्तन मोह उधारिनि॥
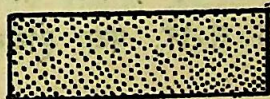
महाभारतीय महामाया

(भीष्म-पर्व २२, २३ अध्याय)

(विजया घनाक्षरी)

महा सागर सी धाई, र.जान बहोर लाई
सुयोधन की मिताई, ओजस्वी बलवाहनी ।
श्रुतायुध बलधारी, शैब्य गोवासनवारी
ईर्ष्या सबै भरे भारी, जाहै सुमति नासिनी ।
महीताल पंचतारी केतु द्रोणसुत धारी
है भीषम भयकारी, कौरवन को अग्रनी ।
अश्वत्थमा धनुधारी, प्रतिहिंसा व्रतधारी
लै सेना की पत्यारी, बनो भीषम रक्षिनी ॥

* * * *

काशिराज मदवारे, को एकाकी ध्वंसि डारे
परशुराम ही हारे, मानौ कायर विचारे ।
ऐसो पितामह सारे, कवचन तन धारे,
सेनापति बनि ठारे, हैं बन्धुता बिसारे ।
युधिष्ठिर श्रास हारे, भला बोलौ पार्थ प्यारे
विजय काके सहारे, पक्ष होवैगो हमारे ।

बोल्यो पार्थ मतिवारे, जय वाही को अधारे
जाको देवै कृष्ण म्हारे, छगुनिया को सहारे ॥

* * * *

भयो शंख नाद भेरी, भीषण पटव केरी
लक्ष नाग व्यूह जोरो, पितामह लै चालियो ।
पाञ्चजन्य बिन बेरी, पार्थ को सुमुख हेरी
देवदत्त कृष्ण टेरी, बैरिन हिय हालियो ।
कृष्ण बोले मुख फेरी, नहि करो पार्थ देरी
दुर्गा श्री दुर नसेरी, सरन उन जाइयो ।
निःशङ्क विजय तेरी, महामाया जौ कृपेरी
चेरी लौ विजय घेरी, बिना प्रयास पाइयो ॥

(दोहा)

पार्थ उतरि रथ सो तुरत, धरयो दीन मन ध्यान ।
सुर-वन्दित माया महा, पढ़यो स्तोत्र मतिमान ॥

(छप्पय)

[ ]

हे सेनानी सिद्ध, मन्दराचल श्री वासिनि ।
हे कपिला कौमारी, काली विजय कपालिनि ।
हे मधु-कैटभ नासिनि, जया पीत-पट-धारिनि ।
हे तारिणि वर वर्णिनि, शुभदात्री कात्यायनि ।

कृष्ण पिंगला अग्रजां श्री विन्ध्याचल निजधाम ।
उमा महा भागा ब्रह्मण्या चरनन सहस प्रनाम ॥

[२]

श्वेता, कृष्ण, कला काष्ठा, वेद श्रुति भाखिनि
स्कन्द जननि. स्वाहा शाकम्भरि मन्त्र स्वरूपिनि ।
वेदमातु माया सावित्री, चण्ड विरूपिनि ।
ह्री श्री, सन्ध्या, तुष्टि पुष्टि, ह्री सूर्य विवर्धिनि ।
जृम्भनि, मोहनि जननी दुर्गा, आर्ये परम ललाम ।
मयूर पिच्छ धारिणि श्री धूम्राक्षी सहस प्रनाम ॥

[३]

काली कोकमुखा श्री माहिष असुर विमर्दिनि ।
रण प्रिया कौशिकी, स्वधा कुल नन्द सुवन्दिनि ।
अग्नि वधू सावित्री, शूल परिघ को धारिनि ।
वैप्रचित्त दानव कुल, शुम्भ निशुम्भ विदारिनि ।
काली कृपाली जगपाली सुर नर करत अकाम ।
पुण्या महामोहनी ब्राह्मी सहस सहस परनाम ॥

[४]

विरुपाक्षिनी भगवति निद्रा मोह प्रसारिनि ।
हिरण्याक्षिनी काली हे दिति सुतन विदारिनि ।

दिव्याम्बरा दिव्यद्युति धारिनि, देवन धृति दायिनि ।
चन्द्र सूर्य विवर्धिनि भक्तन हित त्रैलोक्य निवासिनि ।
दया त्रिलोल हृदय तव अशरण आश्रय धाम ।
उद्धारत सुर नर श्री देवी नत ह्वै करौं प्रनाम ॥

(दोहा)

देखौ माँ कौरव जुरे, हरनें हम सब प्रान ।
सत्व हरे अपमान करि, निर्बल हम सब जान ॥
महा सैन्य लै है खरे, बाबा भीष्म महान् ।
दर्पी दुर्योधन करत, दुर्जय मन मै ठान ॥
निर्बल होवै अति प्रबल, पाय कृपा तव कोर ।
करौ कृपा जगदम्ब हे ! लहै विजय की डोर ॥
वर दायिनि जगजननी मां, सुत सों परम प्रसन्न ।
धी, श्री, ह्री बलदायिनी, जानि भक्त आसन्न ॥
निश्चल विद्युत् सम प्रभा, धारे शस्त्र अनेक ।
प्रगट भई दुर्गा उतै, दुरनाशन जा टेक ॥
सुस्मित देख्यो कृष्ण उन, दीन पार्थ वहि ठौर ।
बोल्यो पइहौ विजय तुम, नारायण गहि पौर ॥
इन्द्र नहीं कछु सकै करि, कौरव गणना कौन ।
इतनो कहि ओझल भई, ठाढे पार्थ सुमौन ॥

(सोरठा)

आशा हिय मैं लहे, पार्थ चढ़े रथ जायकै ।
हाथ शरासन गहे, चले वेग रण भूमि को ॥

॥ इति शम् ॥

केनोपनिषदीय महामाया

(सिन्ध)

शारदा देवी सहस प्रनाम ।

युग युगान्त सब तोहिं विदित हैं, सब वृत्तनि परिणाम ॥१॥
ऐतहास को सब ही घटना, जानत प्रति प्रति याम ॥२॥
वाणी वीणा वाक् शक्ति की देवी, सुर अभिराम ॥३॥
पूर्व-काल मैं भयो तुमुल अति, देवासुर-संग्राम ॥४॥
असुर शक्ति को भयो विमर्दन, सुर सब भए सकाम ॥५॥
बिनवौं वीणा वेगि बजावौ, वर्णन करौ ललाम ॥६॥
भक्ति भावना भाजन जे जन, सब विधि होयँ अकाम ॥७॥
वीणा निसृत वाक्य करूँ मैं, पद्म-राग सह ग्राम ॥८॥

(विजय घनाक्षरी)

देवन मैं विलसत, दैतन मैं करखत
चराचर मैं विहरत, थल थल विराजतो ।
शक्ति को महासागर, महिमा को विभाकर
ज्ञान बुद्धि को आकर, दूजो नहिं विभासतो ।
अभिमान जाको भक्ष्य, पेय है अज्ञान जाको
ऐसे परब्रह्म देव हित सदा विचारतो ।

देवन को शक्ति देतो, असुर विजित होतो
पुनि पुरन्दर स्वर्ग को सिंहासन थापतो।

❀ ❀

स्वर्ग की सुषमा

❀ ❀ ❀

(रोला)

सुख सुखमा कों सार, सदा सब विधि जहँ सरसत।
जहँ वसन्त ऋतुराज, सुहावन नव नित विलसत॥
रजनी को नहिं राज, विभा विधु को राजत उत।
मन्द मन्द आमोद, प्रसारत दिसि चहुँ मारुत॥
मन्दाकिनि यहिं बहत, करत कल कल मन मोहत।
कनक कमल कमनीय, कान्ति सरवर महिं सोहत॥
दयिता द्रौपदि काम, पूरिबे भीमसेन जहँ।
लायो कमल उजारि, मारि रक्षक यक्षन तहँ॥
कल्पवृच्छ कल्पन तै, राजत यहिं देवन हित।
देतो वै फल चारु, सुकृत सों जो जावै तित॥
कामधेनु यहि बसै, कामना याचक पुरवत।
अभिवादन नहिं किए, दिलीप जाहि भो निरपत॥
इन्द्र अंश इन्द्रायुध, अर्जुन वै सीख्यो सब।
भूल्यो निर्वासन दुख, पहुनाई लहि वासव॥

नृत्य गान सिच्छा यहँ, चित्रसेन वहि दीन्यो।
वहैं 'षण्ड हो' शाप, उर्वशी सो वहि लीन्यो।
अमरावती यहै हैं, सुर वीथी नन्दन वन।
बसैं प्रसिद्ध गन्धर्व, अप्सरा अरु चारन जन॥

(विजय विनोद)

जगमगात मनि जटित सिंहासन स्थिर विद्युत सम।
शनि मङ्गल गुरु केतु, हरित बुध सोहत उत्तम॥
जा हित आदि काल सो, दिति सुत करत लराई।
कबहुँ विजय श्री पाय, विराजत हिय मुसकाई॥

पै छनिका सम, सपनो की सम्पति सी भावत।
असुर दलन तै छीनि, आजु सुरपति है राजत॥
सबै देवगण अग्नि, मारुत पारावत परिषत।
बैठे सबै सभा महिं, अपनो महिम बखानत॥
सुस्मित सबको सुनत, इन्द्र निज कुलिश बखानत।
बनो दधीच हड्डी जो, दैतन दीन बनावत॥
धनि महिमा माया की, सुर हू जानि न पावत।
अहं भाव मै मत्त, सदाशिव को नहिं ध्यावत॥
तब मानुष को कौन कथा, कहिबे नहिं आवत।
परमित ज्ञान देह, अति दुर्बल मन खञ्जन वत॥

तुम्बुर गन्धर्व की बधाई

❦ ❦ ❦

हटि गयो दैत राहु, निखरि आयो चन्द्र इन्द्र।
बहुरि आयो स्वर्ग राग, सुरपुर राजत सुरेन्द्र॥
वज्र को विघात सों, आहत भयो दैतन बल।
मारुत मातरिश्वा, के अघात कियो निर्बल॥
भागे भीमकायि भयङ्कर, यम किङ्कर सम।
तजि कै केयूर मुकुट, निज निज विमान उत्तम॥
लए शरण जाय कै, अतल वितल रसातल मैं।
धनि हौ सुरेन्द्र धन्य, प्रताप तेरो सुतल मैं॥
दिति को तपस्या सदा, ही सों होतो है विफल।
राजौ सङ्ग शची सदा, बाढ़े सुराज पल पल॥

❀ ❀

स्वयंप्रभा, मीनाक्षी, मधुरस्रवा अप्सराओं द्वारा गान

❦ ❦ ❦

(राग धनाश्री)

सुरपुर को धनि पुनः बसायो।
दारुण दुष्ट निर्दयी दानव,
सो तुम सबनि नसायो॥१॥

तुमरे आश्रित देव अप्सरा
चारण सिद्ध सतायो ॥२॥
हेरत रह्यो शची इन्द्राणी
पै नहि वाको पायो ॥३॥
सहस्राक्ष तोहिं सहस बधाई
दानव दुःख दुरायो ॥४॥
मङ्गल चहुँ दिसि मङ्गल
मङ्गल तुम हित जायो ॥५॥

(बरवै)

नृत्य गान को दिवि मैं, भयो प्रमोद।
रम्भा लगी नाचने; गति कामोद ॥
स्वयंप्रभा मीनाक्षी, दीन्यो योग।
विरुथनी गोपाली स्त्री सुर लोग॥
मधुरस्रवा, मेनका आईं सङ्ग।
उर उचकाय उर्वशी, खड़ी त्रिभङ्ग॥
चित्रसेन भेरी को, मधुर निनाद।
लहि वीणा धीरन, सुस्वर नाद॥
सुरा रङ्ग मैं सुर सब, भए सुलीन।
सुरस्त्री सङ्ग नर्तत सब, मधु आधीन॥

'नारायण, नारायण', शब्द सुनान ।
भए सचेत देवगन, नारद आन ॥

(दोहा)

सारी दिवि की सभा नै, कियो सपदि सम्मान ।
नारद नै आशिष दियो, साधुवाद अरु मान ॥
आत्म-श्लाघा की बाढ़ी, मनो जाह्नवी बाढ़ ।
सब सुर पौरुष की कथा, अपनो कियो प्रगाढ़ ॥
अभिमानी उन्मत्त लखि, सुर सब मोह विलीन ।
नारद मुनि अति दुखित ह्वै, पुनि नारायण कीन ॥
वीन बजातो तजि सभा, नारायण मन लीन ।
भक्तराज नारद चले, सुर सों परम दुखीन ॥

(सोरठा)

ता छन महा प्रकाश, जिमि देखे नहि कोउ सुर ।
छाय गयो आकाश, बुद्धि मुग्ध सबकी भई ॥
भए जबै चैतन्य, चहुँ दिसि देखन सब लगे ।
शोभा-रूप अनन्य, एक यक्ष निरख्यो उतै ॥

(पद्धरी)

तब कह्यो अमरपति अग्नि जाव ।
पूछौ इनको यहँ कौन भाव ॥

जब अग्नि गयो उन यक्ष पास ॥
कुण्ठित वाणी ह्वै गो हतास ॥
तब यक्ष कह्यो उन मुग्ध लखि।
'है कहा नाम अरु का विशेखि?'
'हौं जातवेद अरु अग्नि नाम।
सब भस्म सकौं करि विश्व धाम ॥'

(बरवै)

तिनका धरयो यक्ष तब, वहं पै एक।
'करौ भस्म याको रखि, आपनि टेक ॥'

अग्नि धधाय धूम सों, दहकन लागि।
जिह्वा सप्त चमाचम, चमकन लागि ॥
ताम्र नील लोहित शिख. चहुँ दिसि जाय।
कोटि सूर्य युगपत, जनु आतप आय ॥
जलन लगो सब सृष्टि, मनौ कपास।
पै न जर्‌यो वह तिनको, अग्नि निरास ॥
लज्जित भागि कहे वह, सुरपति जाय।
'जानि न जाय कौन वह, रहसि न पाय ॥'

(दोहा)

भेज्यो सुरपति वायु को, 'परखौ यह है कौन।
रङ्ग भङ्ग जानै कियो, तेजवन्त अरु मौन ॥'

(पद्धरी)

तब वायु गयो झटि, यक्ष पास ।
पै देखि तेज ह्वै गो हतास ॥
तब यक्ष कह्यो 'तुम कौन देव ?
जानत नहि तुव पूछौं अतेव ॥'

(दोहा)

'पवन नाम विख्यात जग, प्रानिन को मैं प्रान ।
उथल पुथल को बल महा, विनवत सकल जहान ॥

(पद्धरी)

तब धर्‌यो यक्ष तृण लाइ तोरि ।
'यहि गमन देउ नहिं वचन खोरि ॥'
प्रलय काल सम अनिल घोर ।
बहि चल्यो पवन करि अमित जोर ॥
भो शोर घोर जनु प्रलय आय ।
नभ धूलि घोर सों तिमिर छाय ॥
पादप भूधर तोरत बहाय ।
वनचर बिखरे परि अनत जाय ॥
नहि रह्यो अचर कोऊ जहान ।
पै तृण न गयो जनु ध्रुव समान ॥
हैरान वायु अति दीन हीन ।

लज्जित अपमानित मन मलीन ॥
छोटो मुख करि कह्यो जाय।
'यह यक्ष महिम नहि जानि पाय।'
उद्विग्न इन्द्र उठि चले धाय।
पै यक्ष वहाँ सो लुप्तप्राय ॥
तब सहस नयन सों सहस्राक्ष।
न सक्यो देखि जनु परिमिताक्ष ॥

(सोरठा)

अति शोभा को धाम, प्रगट भई इक नारि उत।
हैमवती जनु वाम, उमा नाम दिवि मैं विदित ॥
पूछ्यो उत्सुक इन्द्र, 'कौन रह्यो वह यक्ष इत ?'
'ब्रह्म, सुरेश, अतीन्द्र, जाकी महिमा सों विजय ॥
पाये तुम सब आज, महाबली उन जानियो।
वोही राजन राज, सिरजक पालक जगत के ॥
देखो जो तुम रूप, वाको अधिदैवत कहैं।
विद्युत परम अनूप, सम प्रकाश वहि ब्रह्म को ॥
निमिष मात्र मैं लीन, भए देखि तुमको वहै।
नाहिं प्रतिष्ठा हीन, तुमको उननै है कियो ॥
उन ही को है शक्ति, जासों मन चिन्तन करत।
मनन करन मैं भक्ति, यहै रूप अध्यात्म उन ॥

वन्दनीय यह रूप, मनन स्मरन जो उन करै।
जग मै होय अनूप, वन्दित वरदा ब्रह्म सम ॥'

(कवित्त)

ज्ञान को उदय भयो, तिमिर अज्ञान छयो,
भए देव उपकृत, उमा को सराहते।
ब्रह्म ही को शक्ति लहि, देव तो विजय पाए,
ब्रह्म एक सत है पै, परोक्ष न विकासते।
धन्य उमा माया विद्या, विकासिनि महामाया
अन्ध थे ये लोचन, ज्ञातव्य नहिं जानते।
धन्य महामाया धन्य, धन्य दया देवनि पै
ज्ञान को प्रकाश भयो परम पितु विभासते।

(विजया घनाक्षरी)

उदय कियो ग्यान, उधारि मोह मान कै,
उपकृत देवनि कै, कियो उमा आन कै।
देवन का सुमान कै, विग्यान ब्रह्म ग्यान कै,
क्षय मिथ्याभिमान कै, हर्यो दरस दान कै।
प्रानिन को सुप्रान कै, महिमा महिमान कै,
सुग्यान शक्ति-मान कै, सत् सिच्छा प्रदान कै।
हरि तम अज्ञान कै, अतुल दया दान कै,
माता तुव जहान कै, सुरान कै, द्विजान कै॥

माया उमा धन्य तुव प्रेम ।

पुरुष सनातन दरसन दीने,

धरे परोक्षता नेम ।

बिनु आराधे प्रगट भई मां,

वर्ण मनोहर हेम ।

इतनी दया, दया की जननी,

करन सुरन पै छेम ।

दियो गुरु सम ज्ञान जगत को,

ध्यावौं चरन सप्रेम ॥

परिशिष्ट

[१]

'ददाति-प्रति-गृह्णाति' का समर्थन*

'चण्डी' के आश्विन (सं० १९९६) के अङ्क में उद्भट विद्वान् पण्डित राम जी पाण्डेय शास्त्री (बम्बई) ने 'ददाति प्रति-गृह्णाति' के अर्थ के तारतम्य के विषय में एक लेख लिखा है, जिसमें 'गुप्तवता' टीका के अर्थ की असङ्गति प्रदर्शित की है। शास्त्री जी का यह कथन है कि 'गुप्तवती' कहती है कि स्वयं उपार्जित द्रव्य को भगवती के चरणों में समर्पण करना और मातेश्वरी से उसको पुनः लेकर उपभोग करना—यह अर्थ सप्तशती के इतिहास के ही विरुद्ध है। सुरथ और समाधि ने भगवती को प्रसन्न करने में कहाँ 'ददाति प्रति-गृह्णाति' किया है ?

अतः यह कीलक की आज्ञा इतिहास-विरुद्ध प्रतीत होती है।

पाण्डेय जी ने अन्त में यह भी लिखा है कि इन शब्दों की वास्तविक लेखिका स्वयं जगज्जननी है और यह तुच्छ प्राणी उन्हीं की प्रेरणा से अपनी लेखनी को चलाता रहा है। तब तो 'गुप्तवती' के टीकाकार पर अवश्य ही मातेश्वरी की अत्यन्त कृपा हुई होगी, जब उन्होंने उसे लिखा होगा। अस्तु। हम सबको यह मानकर कि 'गुप्तवती' की व्याख्या सत्य है, यह गवेषणा करनी होगी कि क्यों वह अयुक्त समझी जाय।

---

* संवत् १९९६ के मार्गशीर्ष की 'चण्डी' में पृष्ठ ४११ पर प्रकाशित।

पाण्डेय जी इसी मार्ग का ग्रहण कर अनेक युक्तियाँ प्रदर्शित करते हैं, जिनसे वे प्रकट करते हैं कि 'गुप्तवती' के 'ददाति प्रति-गृह्णाति' के पश्चात् 'द्रव्यं' को कर्म बना देने से मनुष्य को द्रव्य-उपार्जन कर 'भगवती' को समर्पण करना होगा और तब उनकी आज्ञा से उसका स्वयं ग्रहण करना होगा। इस प्रकार मातेश्वरी प्रसन्न हो सकती हैं— 'नान्यथैषा प्रसीदति'।

पाण्डेय जी का यह कथन है कि 'सप्तशती' का आराधन ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी एवं संन्यासी सबके लिये तुल्य है। आपने जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य के भी वाक्य इसके समर्थन में उद्धृत किये हैं। श्री शङ्कराचार्य के वाक्य सर्व-मान्य हैं। उनका कथन है कि द्रव्य-उपार्जन केवल गृहस्थ के लिए साध्य है। अस्तु।

यह 'ददाति' की व्याख्या असङ्गत है, किन्तु इसकी धारणा रखते हुए भी यही प्रतीत होता है कि 'गुप्तवती' की व्याख्या सर्व-मान्य सिद्धान्तों के अनुकूल है और वास्तव में उसी के सहारे मनुष्य जगज्जननी को प्रसन्न कर सकता है और चारों आश्रम-वाले उसका उपयोग कर सकते हैं।

[१]

'गोपनीयम्' के सिद्धान्त पर ही सम्भवतः 'गुप्तवती' ने 'ददाति प्रति-गृह्णाति द्रव्यं' किया है, जिसमें स्पष्ट करते हुए भी अस्पष्ट रहे। द्रव्य की संख्या है नौ—

१ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिशा, ८ आत्मा, ९ मन।

'गुप्तवती' में 'द्रव्यं' शब्द व्यापक रूप में व्यवहृत हुआ है और उसका अर्थ 'सर्व' अथवा 'सर्वस्वं' ही समझना उचित है। क्योंकि जब तक

मनुष्य अपना सर्वस्व तन-मन-धन श्रीचरणों में समर्पित नहीं करेगा, तब तक उत्कृष्ट आराधना हो ही नहीं सकती।

उपनिषद्-सार गीतामृत में भी यही आदेश है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
गीता—९।२७

हे अर्जुन! जो तुम करते हो, जो खाते हो, होम-हवन करते हो, जो दान और तप करते हो, वह मुझे अर्पण किया करो।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्या उपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

जो भक्ति से एकाध पत्र-पुष्प, फल अथवा थोड़ा सा जल भी अर्पण करता है, उस नियत-चित्त पुरुष की भक्ति की भेंट मैं ग्रहण करता हूँ।

यही आशय अथवा आज्ञा 'ददाति' की व्याख्या में 'गुप्तवती' करती है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
गीता—३।११

तुम इस यज्ञ से देवताओं को सन्तुष्ट करते रहो और वे तुमको। इस प्रकार परम कल्याण प्राप्त करो।

आराध्य देव कैसे प्रसन्न हो सकते हैं, जब तक सब कुछ उनको न समर्पण कर दिया जाय? अनन्यता तो तभी हो सकती है। जब तक यह बुद्धि रहेगी कि यह वस्तु मेरी है और यह मैंने किया है, तब तक आराध्य देव की प्राप्ति नहीं हो सकती।

द्विजातियों के पञ्च महायज्ञों में बलि-वैश्वदेव में प्रत्येक मन्त्र के साथ 'न मम' लगा रहता है। यथा—'ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम।' इस प्रकार हम सबके नित्य यज्ञ में यह शिक्षा दी गई है कि अहङ्कार का नाश करो।

जो कुछ तुम्हारे पास है, वह सब उसी को समझो। यही हमारा जगद्-विख्यात महा-सिद्धान्त है, यही मोक्ष का मार्ग है और यही आशय एक शब्द "ददाति" से प्रकाशित है।

[२]

वेदान्त के अनुसार सर्वस्व समर्पण कर—'मा फलेषु कदाचन' का सिद्धान्त ग्रहण कर मनुष्य मोक्षार्थी हो सकता है, किन्तु 'सप्तशती' का इतिहास भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति दोनों का प्रतिपादन करता है।

"ददाति" से मनुष्य मोक्षार्थी हो सकता है किन्तु वह कौन सा विधान है, जिससे उपासक 'भौतिक' उन्नति कर सके? यह समस्या "प्रति-गृह्णाति" में हल हुई है।

अपना सर्वस्व मातेश्वरी के चरणों में समर्पण करने से, जो वस्तुतः उसका ही है, मनुष्य का हृदय अहङ्कार-शून्य हो जायगा। तब उसके पास कुछ भी नहीं रहेगा, जिसको वह अपना कह सके। वह सत्य हरिश्चन्द्र-सा हो जायगा, जो राजपाट पुत्र-कलत्र सब कुछ से हाथ धो बैठे थे। ऐसी अवस्था में वह जगज्जननी से पुनः अपनी कामनाओं की संसिद्धि की याचना करेगा और नैमित्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा।

प्रश्न यह उदय होता है कि "ददाति" तो आर्त उपासक का हृदय कर सकता है; वह सर्वस्व-समर्पण कर सकेगा; किन्तु "प्रति-गृह्णाति" का सम्पादन कैसे होगा?

इसका उत्तर सरल है। जगज्जननी ने तो सब कुछ उपभोग के लिये ही उत्पन्न किया है। अपनी सन्तान को सम्पन्न और सुखी रखने को ही घट-पट-मठ की सृष्टि की है; उसको देने में तो कोई हिचक हो ही नहीं सकती; केवल माँगने की देर है।

समर्पित वस्तु तो मिल ही जायगी और इतर कामनाएँ उसकी प्रसन्नता पर निर्भर करेंगी। इसमें सिद्धान्त यह है कि उपासक जगज्जननी का स्वामित्व सब वस्तुओं पर मान ले और उसको मान कर तब उसका उपभोग करे।

अर्थात् अहङ्कार का नाश भगवती के आराधन में परमावश्यक है और सभी प्रकार के देवाराधन में यह अनिवार्य होगा। यही भाव उपनिषद् में दूसरे शब्दों में निर्दिष्ट है — तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः — त्याग के साथ उपभोग करो। अर्थात् अपना समझ कर न उपभोग करो, किन्तु 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्—' इस सारे जगत् में जो कुछ है, वह सब ईश्वर का ही है, यह समझ कर।

'कीलक' का "ददाति" उपासक को आदेश देता है कि उसी का समझ कर उसका समर्पण कर उपभोग करो।

क्या इसमें कोई सन्देह हो सकता है कि प्रति-दिवस, प्रतिघटी, प्रतिक्षण उपासक अपनी उपभोग-वस्तु को समर्पण करके यदि उपभोग करेगा, तो उसका भाव श्री चरणों में संलग्न नहीं हो जायेगा? भक्त और भगवती में सम्बन्ध स्थिर न हो जायगा?

"ददाति प्रतिगृह्णाति" एक अतुलनीय भौतिक योग का निदर्शन है, जो कालान्तर में मानसिक विनियोग उत्पन्न कर देगा। अर्थात् समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली पराभक्ति का उपार्जन करेगा, जिससे वह सुरथ और समाधि की सी श्रेय-प्राप्ति करेगा।

[३]

विद्वद्वर पांडेय जी का यह भी कथन है कि यदि सुरथ और समाधि बिना "ददाति प्रतिगृह्णाति" के भगवती को प्रसन्न कर सके, तो 'कीलक' ने एक एक नवीन मार्ग का प्रदर्शन क्यों किया, जिसकी व्यवस्था मूल ग्रन्थ ही में नहीं है?

मन्त्र-वेत्ताओं से सुना है और इसका अवश्य ही इतिहास भी होगा, जो विद्वान् पांडेय जी को विदित होगा कि महादेव जी ने किसी समय रुष्ट होकर मन्त्रों को कील दिया था और वे निस्तेज तथा शक्तिहीन हो गये थे। उस समय बड़ा ही आपत्ति-काल रहा होगा; मन्त्रों की निष्फलता ने भारतीयों को असहाय कर दिया होगा। ऐसी दुरवस्था में इन कीलकों की सृष्टि हुई और इनके स्रष्टा परम असाधारण और सिद्ध पुरुष रहे होंगे। आजकल का समय नहीं था कि जब जिसको इच्छा हुई कूड़ा-कबाड़ लिख कर दिया!

जिस समय सुरथ और समाधि ने श्री चरणों को प्राप्त किया था, उस समय 'सप्तशती' कीलित नहीं थी, इसमें तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। अस्तु, कीलक को 'सप्तशती' के इतिहास के विरुद्ध कहना सङ्गत नहीं है।

[४]

'नैषा कीलवती चण्डी''—वचन भी कीलक "ददाति प्रतिगृह्णाति" के विरुद्ध विद्वद्वर पांडेय जी कहते हैं। क्या इस वचन का यह अर्थ नहीं हो सकता कि चंडी अर्थात् भगवती की उपासना कीलित नहीं है?

चंडी शब्द भगवती और 'सप्तशती' दोनों का उद्बोधक है और जब दो वचनों का विरोध हो, तब इस प्रकार व्याख्या होनी चाहिए, जिसमें विरोधाभास न हो। यदि यह अर्थ इस वचन का किया जाय कि 'सप्तशती' तो कीलित है, किन्तु भगवती की उपासना कीलित नहीं है, तो कोई विरोध नहीं रह जाता।

[५]

अन्तिम निवेदन यह है कि मन्त्र-सिद्धि और मन्त्र-देवता-सिद्धि दोनों पृथक् वस्तुएँ हैं। मन्त्र का निर्दिष्ट संख्या तक जप करने से मन्त्र की सिद्धि होती है। शब्द-ब्रह्म की तथ्यता से, मन्त्र जो शब्द समूह है, नियत संख्यक जप करने से सिद्ध हो जाता है। चाहे उस मन्त्र के आराध्य देव प्रसन्न न भी हों। मन्त्र भी स्वयं एक देवता है और निर्दिष्ट संख्यक जप, होम तर्पण से वह जाग्रत हो जाता है और तब उसमें कामनाओं की पूर्ति की क्षमता हो जाती है। कीलक के पढ़ने मात्र से 'सप्तशती' का अब भी प्रत्येक गृहस्थ लाभ उठाता है। यदि कोई तथ्यान्वेषी हो, तो बिना कीलक-स्तोत्र के पाठ के 'सप्तशती' मात्र का पाठ कर अनुभव कर सकता है कि वह उपयोगी होता है या नहीं।

किन्तु इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि केवल जगज्जननी ही नहीं, किन्तु कोई भी देवता 'ददाति प्रतिगृह्णाति' के बिना प्रसन्न नहीं हो सकता। "त्वदीयं वस्तु गोविन्द" का भाव जब तक उपासक के हृदय में संस्थित न होगा और "त्यक्तेन भुञ्जीथाः" के सिद्धान्त पर आराध्य देव की प्राप्ति के अर्थ जीवन व्यतीत न करेगा, तब तक सिद्धि मृग-तृष्णा मात्र है।

[२]

देव्यथर्वोपनिषद् और केनोपनिषद्

के

इतिहासों में विरोध

=++-++=

['चण्डी' के आषाढ़ सम्वत् १९९९ के अङ्क में 'शक्ति की महिमा' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ। उसके लेखक महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित 'विद्यावारिधि' ने शक्ति की महिमा का प्रतिपादन करते हुए देव्यथर्वोपनिषदोक्त महत्त्वपूर्ण इतिहास को उद्धृत किया। उसे पढ़कर पूज्य उपाध्याय जी ने उक्त शीर्षक से एक लेख लिखकर भेजने की कृपा की, जो 'चंडी' के पौष १९९९ अङ्क में प्रकाशित किया गया। वही यहाँ शब्दशः उद्धृत किया जा रहा है।]

भारत इस समय शक्तिहीन देश हो रहा है, जब कि शक्ति ही का सिक्का बड़े प्रबल रूप से संसार की टकसाल में चल रहा है। ऐसे समय में शक्ति का सम्पादन करना परमावश्यक जान पड़ता है।

इस देश में दैवी सम्पत्ति के द्वारा भौतिक उन्नति करने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आई है। यही कारण है कि मन्त्रशास्त्र का विशद भाण्डार अब भी प्राप्य है। यही कारण है कि यज्ञादि और तपस्या के अनेक विधान शास्त्रों में भरे पड़े हैं; किन्तु मुसलमानों के शासन-काल में, जब कि रक्त-रञ्जित यज्ञोपवीत का बड़ा मूल्य हो गया था, ब्राह्मण-जाति अब्राह्मण्य-रूप धारण करने लगी। उसने दैवी सम्पत्ति के उपार्जन करने के विधान का पठन-पाठन बन्द

सा कर दिया और कालान्तर में मन्त्रशास्त्र और सामान्यतः सभी शास्त्र लुप्त से हो गए।

ब्रिटिश-राज्य के आगमन पर धार्मिक जीवन को पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त हुई किन्तु इधर कई शताब्दियों तक आचार्यों और मन्त्र-शास्त्रों के पठन-पाठन के प्रति उपेक्षा का भाव होने के कारण शास्त्र के ज्ञाताओं का अभाव हो गया। भारतीय अपनी बहुमूल्य बपौती भूल गए किन्तु ब्रिटिश-साम्राज्य ने संस्कृत को अपने स्कूल-कालिजों में स्थान दिया, जिस कारण संस्कृत का अभ्युत्थान हो चला।

आज वह समय आ गया कि 'गोपनीयम्' के बन्धन से मुक्त होकर 'चण्डी' आद्या-शक्ति की चर्चा कर चली और उसके द्वारा विद्वान् और ज्ञाता लोग सामान्यजनों के हितार्थ महामाया के इतिहास और उसकी प्राप्ति के उपायों का निर्देश करने लगे।

इन आचार्यों, संस्कृतज्ञों और विद्वानों से सानुनय प्रार्थना है कि वे अपना कुछ समय शास्त्रों, पुराणों और धर्म-सम्बन्धी अन्यान्य ग्रन्थों के अनुशीलन में देकर इसकी गवेषणा करें कि यज्ञादि का विधान जो ब्राह्मण-खण्डों में पाया जाता है और जिसमें जगज्जननी को इतर देवताओं के साथ कोई अंश नहीं दिया गया है, क्या उस समय शक्ति-पूजा नहीं थी? शक्ति-पूजा कब से आरम्भ हुई? अर्थात् विद्वानों का कर्तव्य है कि वे शक्ति-पूजा के इतिहास की गवेषणा कर सामान्य जनों के हितार्थ उसको प्रकाश में ले आवें। जहाँ इतिहासों का विरोध हो, वहाँ वे उसका कारण जानें और उसके प्रतिहार का मार्ग विचारें।

विद्यावारिधि श्री दीक्षित जी ने अपने उपर्युक्त लेख में देव्यथर्वोपनिषद् से जो इतिहास उद्धृत किया है, उसमें और केनोपनिषद् में आये हुये वैसे ही इतिहास में केवल शाब्दिक भेद है। केनोपनिषद् का इतिहास [illegible] प्रकार है—

ब्रह्म (देवासुर) संग्राम में विजयी हुए। किन्तु उस विजय पर देवता लोग अहङ्कार का भाव प्रकट करने लगे। तब वास्तविक स्थिति का उन लोगों को परिज्ञान कराने के लिए यथारूप में ब्रह्मदेव का प्रादुर्भाव हुआ, परन्तु देवता लोग यह नहीं जान पाये कि यह यक्ष कौन हैं। उन सबने अग्नि से कहा—देखो, यह कौन है?

अग्नि दौड़ कर गए। उन्हें देखते ही यक्ष ने पूछा—तुम अग्नि हो?

अग्निदेव ने उत्तर दिया—हाँ, मैं अग्नि हूँ।

इस पर यक्ष-रूप-धारी ब्रह्म ने पूछा—तुम्हारी क्या शक्ति है?

इस प्रश्न के उत्तर में अग्नि ने कहा—सब भस्मसात् कर सकता हूँ, जो कुछ पृथ्वी में है!

तब यक्ष ने एक तृण रख दिया और कहा—जलाओ।

अपनी पूरी शक्ति लगा देने पर भी जब अग्निदेव उस तृण को न जला सके, तब लौट कर उन्होंने कहा—मैं नहीं समझ सका कि यह यक्ष कौन है!

इसके बाद यक्ष के सम्बन्ध की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए वायु देवता गये और एक तृण भी उड़ाने में असमर्थ होकर वापस चले गये। तब इन्द्र से सभी ने कहा—हे देवराज, आप देखें, यह कौन है?

अन्त में जब देवराज स्वयं यक्ष की ओर दौड़े, तब वह अन्तर्धान हो गया।

उसी समय आकाश में एक स्त्री आई—बहुत सुन्दर हैमवती उमा। उन्होंने कहा—यह यक्ष ब्रह्म है।

इसके पश्चात् इन देवी ने कहा—ब्रह्म ही सब कुछ है, उसी की शक्ति से सबको विजय आदि प्राप्त होती है।

देव्यथर्वोपनिषद् में और केनोपनिषद् में यह भेद है कि देव्यथर्वोपनिषद् में इन्द्र जाकर स्वयं समझ लेते हैं कि यह शक्ति-स्वरूपा

जगदम्बा हैं और देवता उनकी स्तुति करते हैं और केनोपनिषद् में इन्द्र के जाते ही राजा का अपमान न कर यक्ष-रूपी ब्रह्म लुप्त हो जाते हैं और तब भगवती उमा ब्रह्मदेव की सर्वस्वता बताती हैं।

इस एक ही वृत्तांत का दो उपनिषदों में दो प्रकार वर्णित होना परम आश्चर्य-जनक है। ऐसे विरोध का समाधान करना मेरे जैसे अल्पविदों का कार्य नहीं है। विद्यावारिधि दीक्षित जी से सानुनय प्रार्थना है कि 'लोक-हिताय' इसका समाधान करें।

किन्तु केनोपनिषद् से यह बड़े गौरव की बात निकलती है कि अहङ्कार-मद-विघूर्णित देवताओं के मोह को विद्या-रूपिणी भगवती ही ने नाश किया और 'अकर्मा' ब्रह्म को ही सब कुछ बताया। जगज्जननी का अस्तित्व ब्रह्म-विद्या का उपदेश करनेवाले केनोपनिषद् में वर्तमान है, यह बात उनके भक्तों के लिए गौरवास्पद है और केनोपनिषद् का इतिहास बड़े महत्व का है।

"उमा हैमवती"—यह भी भक्तों को सप्तशती के उत्तम चरित्र का स्मरण दिलाता है, जब कि भगवती पार्वती गङ्गा-स्नान करने को आईं और देवताओं के द्वारा की जानेवाली स्तुति सुनकर उन्होंने पूछा कि 'किसकी स्तुति कर रहे हो?

इतने ही में उन्हीं के शरीर से अम्बिका भगवती निकल कर बोलीं कि 'यह सब हमारी स्तुति कर रहे हैं।'

"बिभ्राणं सुमनोहरं"—अम्बिका का प्रादुर्भाव होते ही 'कृष्णाभूत् सा तु पार्वती'—पार्वती जी काली पड़ गईं। "पार्वती", "उमा" और "अम्बिका" के भेद अथवा अभेद का किसी दूसरे समय विचार होगा।

इस समय तो केवल इतना ही कहना है कि शक्ति-उपासना की उपास्य देवी का ज्ञानदात्री-रूप में 'केनोपनिषद्' में आख्यान है, जिससे यह प्रकट होता है कि परब्रह्म ने स्वयं देवताओं को दर्शन और उपदेश देना अविधेय समझा और यदि देना चाहा, तो भगवती के रूप में।

दूसरा निष्कर्ष यह है कि जिस समय "उमा हैमवती' प्रादुर्भूत हुईं; उस समय देव-दानव के अतिरिक्त "परब्रह्म" मात्र ही थे। इसमें 'उमा हैमवती' की अभेदता परब्रह्म से लक्षित है और परब्रह्म की शक्ति ही भगवती हैं; यह कहना भी न्यायसंगत है।

ब्रह्मर्षये नमः

परम पूज्य श्री उपाध्याय जी की दिनचर्या के साक्षी होने का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है; वे उनके भव्य स्वरूप में एक ब्रह्मर्षि के साक्षात्

लेखक ८६वें वर्ष में

दर्शन का लाभ करते हैं। परात्मा आपको शतञ्जीवी करें, जिससे आपके पुण्य दर्शन से श्रद्धालु जनों का कल्याण होता रहे।

हिमालय-महिमा

सत गुण को स्वरूप श्वेत शीतल हिम आकर।
रज गुण रञ्जित होत, परसि उद्दीप्त दिवाकर॥

ताहि हिमालय शरण लियो, जहँ गङ्गा पावन।
दीन देवगण किए महाशक्ती आराधन॥ [पृष्ठ १४]